# आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक मूल्य

*डॉ. यशस्पति झा

'सरस्वती' सम्पादन के माध्यम से हिन्दी में जिस युगान्तरकारी साहित्य के मृत्य का द्विवेदी जी ने पथ प्रशस्त किया था, उसके मूल में उनका युग सापेक्ष, स्वस्थ परम्पर चित्तन था जिसमें तत्कालीन चुनौतियों का उत्तर तथा हिन्दी साहित्य धारा के लि स्पष्ट दिशा निर्देश बाहित था। यद्यपि भारतेन्दुयुगीन साहित्य से मुक्त होकर परिवर्तित परिवेश में अपना मार्ग बना रहा था, तो भी द्विवेदी जो स्पष्ट प्रखर और तेजस्वी मार्गदर्शन के कारण युग की अपेक्षाओं की पूर्ति हुई। इस दिश संकेत में द्विवेदी जी का साहित्य के विषय में बड़ा व्यापक सूक्ष्म एवं युगानुकूलच निहित था, जिसका निरूपण और विवेचन यहाँ अभीष्ट है।

आज अंग्रेजी में 'लिट्रेचर' शब्द समग्र ज्ञान विज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है उसका हिन्दी में उद्घोष सर्वप्रथम द्विवेदी जी के द्वारा ही हुआ— ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है' साहित्य के अन्तर्गत परम्परागत काव्य और शास्त्र का पूरा विस्तार समाहित है लेकिन इसी के एक अंश कविता के विषय में द्विवेदी जी की निन्ति धारणा है—'कविता है भावों की अभिव्यक्ति" आज नहीं बहुत पहले से कविता में दुनिया भर के विषय भरे जाते रहे इस दृष्टि से यह विचार स्पष्टतः कविता का स्वरूप और क्षेत्र परिभाषित करता है। द्विवेदीयुगीन साहित्य में उपयोगिता इतिवृत उपदेश को हो भरमार रही हो, लेकिन द्विवेदी जी बहुत दृढ़ता से कविता को भावाभिव्यक्ति के रूप में ही परिभाषित करते हैं। विषय वस्तु कुछ भी हो सकती है। लेकिन वह भाव में उसने पर ही कविता के क्षेत्र में प्रवेश की अधिकारी है। उसके मूल में भाव का होना अपरिहार्य है। इन्हीं भावों अर्थात् मनोविकारों की उत्कृष्ठ शाब्दिक चित्रात्मक अभिव्यक्ति को ही द्विवेदी जी कविता स्वीकार करते हैं-'जितने रस और जितने भाव है, सब मन के विकार है और कुछ नहीं।' इन विकारों के उत्कृष्ठ शब्द चित्र का ही नाम कविता है। यह धारणा उन्होंने एकाधिक स्थलों पर व्यक्त की और इसकी कसोटी पाठक श्रोता का काव्य में व्यक्त भावों में लीन हो जाना माना है—'कविता पढ़ते समय पढ़नेवाला यदि तद्गत रस में न डूब गया तो वह कविता कविता नहीं है। श्रेष्ठ कविता में व्यक्त भाव का पाठक को सच्चा विश्वसनीय प्रमाणिक लगना भी आवश्यक है—'अच्छी कविता की सबसे बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठे कि सच कहा । ' कविता

में व्यक्त भाव श्रोता पाठक द्वारा अनुभूत होकर उसे तल्लीन करने के कारण ही रस बनते हैं और इसी रसमय अर्थ को कविता के प्राण तत्व के रूप में द्विवेदी जी ने प्रतिष्ठित किया है— 'अर्थ सौरस्य ही कविता का प्राण है। "

हिन्दी अनुशीलन : ७६

प्रायः छन्दोबद्धता की काव्य का पर्याय समझ लिया जाता है जब कि द्विवेदी जी मानते हैं-'गय और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। यह समझना लता की पराकाष्ठा है, जो कुछ छन्दोबद्ध है, सभी काव्य है।" इस प्रकार द्विवेदी जी काव्य को भावों की प्रभावशाली और चित्रात्मक अभिव्यक्ति मानते हैं. जो श्रोता पाठक नुकूल भावों की तीव्र अनुभूति कराने में समर्थ होने के कारण श्रेष्ठ माना जाता है । काव्य के गुणों के रूप में द्विवेदी जी ने प्रसाद, वर्णाभरण और चमत्कार को महत्व दिया है। प्रसाद गुण के कारण ही कविता का सहज संप्रेषण होता है—'कविता का सबसे बड़ा गुण है कि उसकी प्रासादिकता' वही जब नहीं, तब कविता सुनकर श्रोता रोझ किस तरह सकेंगे।" सहजतः बोधगम्य काव्य लोक प्रसिद्ध ही होगा जो का साधारण की समक्ष से बाहर होता है वह बहुत कम लोकमान्य होगा।" अभिव्यक्ति का वैशिष्ट्य भी काव्य के लिए आवश्यक है क्योंकि वही भावोद्दीपक होता है। द्विवेदी वो के अनुसार- 'दूसरा गुण कविता में यह होना चाहिए कि कवि के ढंग में निरालापन अनुठापन हो । 10 वैसे अनूठेपन को वे अपिरिहार्य नहीं मानते - 'यह (अभिव्यक्ति का निरालापन) न हो तो उसको कविता सुनकर श्रोता का चित्त तो कुछ चमत्कृत हो।' बुद्धि चमत्कृत नहीं, चित्त चमत्कृत करना काव्य का गुण माना गया है इसी सन्दर्भ में ० आजाद के 'आबे हयात' से उद्धरण द्विवेदी जी ने दिया है

'है इल्तजा यही कि गर तू करम करे / बह बात दे जुबा में कि दिल पर असर इसी चित्त चमत्कृति को ही सत्कविता का सबसे प्रधान लक्षण द्विवेदी जो मानते 25 'हे कविते' नामक कविता में द्विवेदी जी ने कविता का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है

**'सुरम्य रूपे ! रसराशि रंजिते ! विचित्र वर्णाभरणे ! कहाँ गई ?**

अलौकिकानन्द दायिनी महाकवीन्द्रकान्ते ! कविते ! अहो कहाँ ?14 मिल्टन से सहमत होते हुए द्विवेदी जी सादी और जोश से भरी हुई कविता को आवश्यक मानते हैं लेकिन वह असलियत से गिरी हुई न होनी चाहिए। जोश से उनका अभिप्रायः आवेग और असलियत से उनका आशय यह है- 'कोई बात ऐसी नहीं होनी हिए जो दुनिया में न होती हो। क्योंकि बनावट से कविता बिगड़ जाती है। 77 स बनावट का कारण चाटुकारिता भी है— 'खुशामद के जमाने में कविता बुरी हालत होती है। अश्लीलता ग्राम्यत्व और देशकाल असंगति से भी कविता घटिया हो जाती -'अश्लीलता

और प्राभ्यतागभित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए।

और न देश काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। 129 द्विवेदी जी ने कवि के व्यक्तित्व पर भी विचार किया है। श्रेष्ठ कवि में रचना मिता सहज होती है न कि अभ्यासजन्य – 'अच्छी कविता अभ्यास से नहीं आती जिसमें कविता करने का स्वाभाविक माद्दा होता है, वही कविता कर सकता है। लेकिन इस दे के न होने पर भी अभ्यास और सत्संग से कवित्व शक्ति का स्मरण हो सकता -जिसके हृदय में कवित्व का बीज नहीं है, वे भी पास और सत्संग की कुछ ही प्राप्त करते है इसलिये

-श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुव करोत्यैव कमप्यनुग्रहं परन्तु एक बात है—'वह यह कि बने हुए कवि प्रकृत कवि की समकक्षता नहीं कर सकते। इसके अलावा कवि के लिये बाह्य प्रकृति और मानव प्रकृति का भी पर्याप्त ज्ञान होना अपेक्षित है—'जिय कवि को मनोविकारों और प्रकृति का ज्ञान नहीं, वह कदापि अच्छा कवि नहीं हो सकता ।" जनसामान्य द्वारा गृहीत काव्य को कां की लोकप्रियता की कसौटी माना गया है—जब बोलचाल की भाषा की कविता को आज कल के और दूसरे पद्यों को साधारण लोग भी पढ़ने लगे तब समझना चाहिए कि कविता और कवि लोकप्रिय है। जनसामान्य कविता को तब महत्त्व देता है जब उसमें सामान्य लोगों की अवस्था, विचार मनोविकार, धीरज, साहस, प्रेम दया, सूक्ष्म कल्पना, सहज अलंकार, सहज मनोहर भाषा, परिचित सुहावना और वर्णनानुकूल छन्द हो । 'कवि के लिए काव्य में वर्णित पात्रों के अन्तस्थल में प्रवेश कर उसके भावों को प्रभावशाली अभिव्यक्ति देना आवश्यक है—'कवियों का काम है कि वे जिस पात्र अथवा जिस वस्तु का वर्णन करते हैं उसका रस अपने अन्तःकरण में लेकर उसे ऐसा शब्द स्वरूप दे देते हैं कि उन शब्दों को सुनने से वह सुनने वाले के हृदय में जाग्रत हो उठता है । 25 कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा हो उसके लिखित और मौखिक रूप का प्रमाण है- 'भाषा और बोलचाल के सम्बन्ध में कवि ही प्रमाण माने जाते हैं कवियों ही के द्वारा प्रयुक्त शब्दों और मुहावरों को कोशकार अपने कोशों में रखते हैं... भाषा और बोलचाल का बनाना और बिगाड़ना प्राय कवियों के हाथ में रहता है। द्विवेदी जी कवि को बड़ा उत्तरदायी मानते हैं ।

विषय वैविध्य और यथार्थ के प्रति द्विवेदी जी का बड़ा आग्रह है- 'शिक्षित मोर सभ्य देशों में कवि का काम प्रभावोत्पादक रीति से यथार्थ घटनाओं का वर्णन करना है आकाश कुसुमों के गुलदस्ते तैयार करना नहीं । कारणवश अमीरों को झूठी प्रसंशा करने अथवा किसी एक ही विषय की कविता में कवि समुदाय के आमरण लगे रहने से कविता की सीमा कट छँट कर बहुत थोड़ी सी रहती है।" कवि को चाटुकारिता और विषयवस्तु की संकीर्णता की अवांछनीयता पर द्विवेदी जी ने प्रहार किया है जिसके फलस्वरूप द्विवेदीयुगीन साहित्य का फलक विस्तृत हुआ क्योंकि द्विवेदी जी के

अनुसार कवि का सबसे बड़ा गुण नयी-नयी बातों का सूझना है। विषयवस्तु की युगानुकूलता पर द्विवेदी जी ने बल दिया है- 'जैसा समय आता है साहित्य भी वैसा ही बनता है।" तथा ये विषय मनोरंजन और उपदेश युक्त होने चाहिए । १० रीतिकालीन रुचिजर्जर काव्य शास्त्रीय चर्चित चर्वण और दरबारी चाटुकारिता से भरी प्रशस्तियाँ द्विवेदी जो को अवांछनीय लगती है—'हमारी अल्पबुद्धि के अनुसार रस कुसुमाकर (प्रताप नारायण और जसवन्त जसोभूषण (मुरारिदान कविराजा) के समान ग्रन्थों को इस समय आवश्यकता नहीं है..... यदि मेघनाद वध अथवा यशवन्त राय महाकाव्य वे नहीं लिख सकते तो ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को सुनकर उन्हों पर छोटी-छोटी कविताएँ करनी चाहिए।"" द्विवेदी जी ने बलदेव प्रसाद मिश्र को राम राज्य' लिखने को कहा । " यूटोपिया के अतिरिक्त दीन दलितों को भी साहित्य के विषय बनाने का आग्रह द्विवेदी जी ने श्रीराम शर्मा से किया— 'खूब लिखिए कोरियों

जारों आदि गरीबों के चरित्र लिखकर आत्मा को उन्नत कीजिए बड़े बड़ों के चरि व निखने वाले तो बहुत हैं दीन दुखियों के जीवन का खाका खींचने वाले कोई भी नहीं मैंने बनारसी दास चतुर्वेदी से कहा था कि आप इस रुपये के एक अंश से प्रसिद्ध देहातियों हो के जीवन चरित्र लिखाइये। इस प्रकार प्रकृति आन्दोलन से पहले दीन दलितों ही नहीं किसानों को साहित्य में प्रविष्ट कराने की चेष्टा की द्विवेदी जी की यह दूरदृष्टि को देवी देवताओं और उच्च कुलोद्भव नायकों की चकाचौंध से भी युग में यह इच्छा, उनके - युगान्तरकारी होने का साक्ष्य है।

केवल मनोरंजन तक ही साहित्य के प्रयोजन को सीमित न मानते हुए द्विवेदी जी ने जाति और स्वदेश की उपति जैसे विराट लक्ष्य को भी प्रतिष्ठित किया- 'अपनी भाषा का साहित्य ही जाति और स्वदेश की उन्नति का साधन है 'अपनी ही भाषा के साहित्य से जनता की यथेष्ट ज्ञानोक्षति हो सकती है अन्याय, अशिव, अत्याचार के और धर्म की संस्थापन जैसे अवतारी कार्यों का महान उत्तरदायित्व कवि को सौंपते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है— कवि भी 'धर्मसंस्थापनार्थाय' उत्पन्न होते है उनका कार्य केवल तुक मिलाना या पावस पचासा' लिखना नहीं कवियों को ऐसा काम-धर्म संस्थापना करना पड़ता है। वे स्वभाव से ही ऐसा करते हैं कि संसार का कल्याण हो। निश्चय ही यहाँ महान कवियों के ही विषय में कहा जा रहा है न कि अपनी मनस्तुष्टि या स्वार्थ के लिए कलम घिसनेवालों के लिए इस उत्तरदायित्व से पलायन करने वाले रचनाकारों के दुष्परिणाम पूरी जाति भोगती है- 'जिस साहित्य में इतनी शक्ति है जो साहित्य मुद्दों को भी जिन्दा करने वाली औषधि का आकार है, उसके उत्पादन और संवर्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती वह अज्ञान अंधकार के गर्त में पड़ी रहकर किसी-न-किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो इतने महत्वशाली

साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता अथवा मनुष्य उससे अनुराग नहीं रखता वह समाज द्रोही है वह जाति द्रोही है किबहुना वह आत्मद्रोही है, आत्महंता भी है ।३६ शायद ही इतने बड़े उत्तरदायित्व की अपेक्षा साहित्यकार से, इससे पहले किसी ने की हो। एक युगद्रष्टा एवं स्रष्टा के साथ २ पूरे युग को दिशा देने - वाले युग पुरुष से ही यह अपेक्षित है। द्विवेदी जी ऐसे ही युगपुरुष हैं। सोद्देश्य साहित्य रचना के लिए प्रेरित करने वाले द्विवेदी जी इस तथ्य से भली-भांति अवगत हैं कि युग निर्माण का यह कार्य साहित्य, पाठक श्रोता के मन में रस उत्पन्न करके ही कर सकता है केवल बुद्धि को प्रभावित करके नहीं— 'आजकल के विद्वानों का मत है कि अन्तःकरण में तारस को उत्पन्न करके और थोड़ी देर के लिए और बातों को भुलाकर उदार विचारों लो में मन को लीन कर देना ही कवि का सच्चा पर्यवसान है।" यह रस, लोभ या भय ही से मुक्त होकर लिखी गयी रचना में ही सम्भव है- 'परतन्त्रता या पुरस्कार प्राप्ति या और किसी कारण से सब बात कहने में किसी तरह की रुकावट पैदा हो जाने से यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो कविता का रस जरूर कम हो फा०- 11 ने जाता है। अपने युग को पूरी सामर्थ्य और सीमा के साथ प्रतिविम्वित पर यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व भी द्विवेदी जी साहित्य का ही मानते है जाति विशेष के उत्कर्षापक का उसके उच्च नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और संगठन का उसकी ऐतिहासिक घटनाओं और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिविम्ब यदि देखने को कहीं मिल सकता है उसके धन्य साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक जाशक्ति या निर्भीरता और सामाजिक सभ्यता अथवा असभ्यता निर्णायक एक मात्र साहित्य ही है।" इस मथार्थ चित्रण के मूल में कही प्रगति का मा दर्शन भी परोक्षत: निहित है, क्योंकि साहित्य केवल दर्पण नहीं है।

कल्पनायुक्त होने के कारण कविता का वह महत्त्व बौद्धिक तार्किक विकस सम्पन्न सभ्य समाज में नहीं रह जाता, क्योंकि बुद्धि विवेक सम्पन्न पाठक अस्वाभाविक कल्पना और अतिशय भावुकता से नहीं बहलाये जा सकते। इसीलिए द्विवेदी जी ने लिखा है— 'जब तक ज्ञान की वृद्धि नहीं होती तब तक सभ्यता का जमाना नहीं आता तभी तक कविता की विशेष उन्नति होती है। क्योंकि सभ्यता और कविता में परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या वृद्धि होने से कविता का असर कम हो जाता है। कविता में कुछ-न-कुछ झूठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्धसभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत पुराने काव्यों को पढ़ने से लोगों का चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था उतना अब नहीं 1140 यह आशंका इस शताब्दी के प्रारम्भ में पश्चिम में भी व्यक्त की गयी थी लेकिन यह निर्मूल सिद्धि हुई । आज सभ्य से सभ्य देश और वर्ग में कविता का आदर घटा नहीं है। हाँ कपोल कल्पना

अस्वाभाविकता और बुद्धि अग्राह्य एवं तर्कविरोधी कविता आज ग्राह्य नहीं है । सभ्यता के विकास के साथ रुचि परिवर्तित हुई है, कविता की भी प्रवृत्ति बदली है, लेकिन सभ्यता के विकास से कविता का ह्रास नहीं हुआ, अपितु स्वरूप परिवर्तित हुआ है। युग की माँग और रुचि की पूर्ति करने वाली कविता ग्राह्य हो रही है विशिष्ट जनों के द्वारा सामान्य जन आज भी भाव प्रधान कविता को ही पसन्द करते हैं । अपितु सभ्यता के नाम पर जो अमान बीकरण आज बढ़ता जा रहा है इसलिए कविता के सहज स्पर्श और आनन्ददायक रूप की आवश्यकता आज पहले से अधिक अनुभव की जा रही है। तार्किकता शुष्कता यांत्रिकता जटिलता कुंठा और तनाव के परिवेश में शुद्ध सात्विक भावनात्मक रचनाओं की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। जन रुचि के अनुकूल कविता की प्रकृति बदलती। रही है और आगे भी बदलेगी । अतः द्विवेदी जी की यह आशंका अन्यों की भांति निर्मूल सिद्ध हुई।

द्विवेदी जी के अनुसार पद्य बद्ध होने से ही कोई रचना काव्य नहीं हो जाती। उसके लिए गद्य या पद्य का बन्धन मान्य नहीं है, लेकिन छायावादी कवियों द्वारा मुक्त द प्रयोग को द्विवेदी जी अराजकता और व्यर्थ की उछल कूद समझते हैं ये लोग (छायावादी कवि ) बड़े ही विलक्षण छन्दों या वृत्तों का भी प्रयोग करते हैं। कोई बो लिखते हैं कोई छपदे और ग्यारह पदे और कोई तेरह पदे किसी की चाल सतर एक भर सम्बो, तो दो सतर दो अंगुल की ही। फिर वे लोग बेतुकी पदावली भी लिखने को बहुधा कृपा करते हैं। इस दशा में इनकी रचना एक अजीव गोरखधंधा सी हो जाती है। नये शास्त्र को आशा के कायल, नये पूर्ववर्ती कवियों की प्रणाली के अनुवर्ती नये सत्समालोचकों के परामर्श की प्रवाह करने वाले। इनका मूल मन्त्र है 'हम चुना दीगरे नेस्त' इस हमदानी को दूर करने का क्या इलाज हो सकता है, कुछ समझ में नहीं आता 11 द्विवेदीयुगीन काव्य की इतिव्रतात्मकता उपदेशात्मकता और स्थूल उपदेश परकता के विद्रोहस्वरूप छायावादी काव्य संवेदना और free का एक अदभूत स्वरूप लेकर साहित्य जगत में प्रकट हुआ, जिसका परम्परावादियों ने भरपूर विरोध किया। स्वानुभूति और रहस्यात्मकता को व्यक्त करने वाला शिस्य प्रतीकों विम्बों उपमानों तथा परम्परागत छन्दों के नूतन स्वरूप एवं लयप्रधान मुक्त छन्द के विषय पदों के कारण, यतिमति पादपूर्ति के रूति नियमों की अवहेलना के कारण छायावादी छन्दविधान कटु आलोचना का शिकार हुआ। उसी की झलक द्विवेदी जी के उक्त कथन में है। काव्य के क्षेत्र में यह आमूल चूल परिवर्तन सरलता से ग्राह्य हो भी नहीं सकता था वैसे साहित्य जगत में नया आन्दोलन प्रायः इसी व्यंग्य विद्रूप और कटु आलोचना को झेलता जाया है लेकिन बहुत जल्दी ही इसमें फैशन के तौर पर आयी नवीनता का आग्रह कम होता गया और इतिहास साक्षी है कि छायावाद के श्रेष्ठ काव्य के रूप में जो रचनाएँ प्रति ठित हुई, उनमें ऐसी अराजकता नहीं है।

द्विवेदी जी ने परिवर्तित परिस्थितियों में हिन्दी में उर्दू के विशिष्ट छन्दों के प्रयोग को उचित ठहराया था—'आजकल की बोलचाल की हिन्दी कविता उर्दू के विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए। द्विवेदी जी के सामने ही स्वाइयाँ और गजल हिन्दी में लिखी जाने लगी थी और आज तो ये बहुत ही प्रचलित हैं।

भावों की तुलना में द्विवेदी जी ने भाषा को गौण माना- 'कविता के लिए भाषा बहुत ही गोण साधन है। 45 'भाव अनूठे चाहिए भाषा कोउ होय' के समर्थक हैं द्विवेदी जी- 'कविता यदि सरस और भावमयी है तो उसका अवश्य ही आदर होगा। भाषा उसकी चाहे ब्रज हो या उर्दू 144 लेकिन यह छूट केवल अपनी विभिन्न भाषाओं में से किसी एक के चयन के लिए है । स्वदेशी छोड़कर विदेशी भाषा को रचना का माध्यम न बनाने के लिए नहीं। भारतेन्दु जी के 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए निज भाषा प्रेम को स्वदेश प्रेम का एक अपरिहार्य बंग द्विवेदी जी मानते हैं—'जो अपनी भाषा का आदर नहीं करता, जो अपनी भाषा से प्रेम नहीं करता, वह अपनी मातृ भूमि की कदापि उन्नति नहीं कर सकता, उसके स्वराज्य का प्रश्न, उसके देशोद्धार का संकल्प, उसकी देश भक्ति को दुहाई, बहुत कुछ निस्सार है। क्योंकि द्विवेदी जी का दृढ़ विश्वास है— 'यदि भाषा गयी अपनी जाती यता और अपनी सत्ता भी गयी समझिये बिना अपनी भाषा की नींव दृढ़ किये स्वराज्य की नींव नहीं हो सकती क्योंकि भाषा किसी भी जाति या राष्ट्र की अतिसंस्कृति और संकल्प की वाहिका होती है। भाषा के साथ संस्कृति अभेद्य रूप से संयुक्त रहती है।

काव्य को जनग्राह्य बनाने के लिए भाया के सुबोधगम्य रूप पर द्विवेदी जी ने बढ़ा बल दिया है— 'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके। 17 अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों के स्थान पर बलाव संस्कृत शब्दों का प्रयोग द्विवेदी जी को मान्य नहीं है 'यदि हिन्दी का कोई शब्द मिले का लिखने में हानि नहीं। पर जान बूझ कर भाषा उच्च बनाना हिन्दी के पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है । अतः हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों को भी चाहिए कि संस्कृत के विलष्ठ शब्दों का प्रयोग यथासम्भव कम किया करें। 240 इसीलिए साहित्य में वे बोल चाल की भाषा के प्रयोग के पक्षधर है— 'भाषा बोलचाल की हो, क्योंकि कविता की भाषा बोलचाल से जितनी दूर जा पड़ती है उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है। बोलचाल से मतलब उस भाषा से है जिसे खास और आम सब बोलते हों। विद्वान और अविद्वान दोनों जिसे काम में लाते हैं। 30 समृद्धि के नाम पर हिन्दी को तत्सम शब्दावली से लाद देना केवल पुनरुत्थानवादी आग्रह है भाषा की समृद्धि उसके अधिकाधिक जनग्राह्य एवं अभिव्यक्ति

समर्थ होने में है और फिर सजीव भाषा अन्य सजीव भाषाओं के सम्पर्क में आने से सहज ही आदान-प्रदान करती है। हिन्दी भाषा का इतिहास और वर्तमान भी इसका साक्षी है। द्विवेदी जी के अनुसार- 'हमारी हिन्दी सजीव भाषा है। इसी के सम्पर्क के प्रभाव से उसमें अरबी फारसी और तुर्की भाषाओं तक के शब्द ग्रहण कर लिये है और अब अंग्रेजी भाषा के भी शब्द ग्रहण करती जा रही है। इसे दोष नहीं गुण समझना चाहिए। क्योंकि अपनी इसी ग्राहिका शक्ति के प्रभाव से हिन्दी अपनी वृद्धि ही कर रही है हाम नहीं, ज्यों-ज्यों इसका प्रचार बढ़ेगा त्यों-त्यों इसमें नये-नये शब्दों का आगमन होता जायेगा। 150 दूसरी भाषाओं के शब्दों के ग्रहण से हिन्दी की प्रकृति नहीं बिगड़नी चाहिए तथा अपने व्याकरण के अनुसार ही दूसरी भाषाओं के शब्द प्रयोग होने चाहिए— 'दूसरों के शब्द भाव मुहावरे ग्रहण करने पर भी हिन्दी-हिन्दी ही बनी है या नहीं..... विदेशी भाव शब्द तथा मुहावरे ग्रहण करने में केवल यह देखना चाहिए कि हिन्दी उन्हें हजम कर सकती है या नहीं। उनका प्रयोग खटकता तो नहीं। वे उसकी प्रकृति के प्रतिकूल तो नहीं है। 52 संस्कृत

इस प्रकार द्विवेदी जी ने युगानुकूल अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु साहित्य की आकृति प्रकृति का निरूपण किया है। मूलतः सम्पादक होने के नाते जनसामान्य तक अपने कप्य को प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषित करने के लिए उनकी शैली में व्याख्यात्मकता अधिक है । सोद्देश्य लेखन के पक्षधर होने के नाते इस चिन्तन में उपदेश का स्वर भी है। एक उत्तरदायी सम्पादक होने के कारण साहित्य में बढ़ती अवांछनीयता और रूढ़ि रीति जर्जर पुरानी बातों का तर्कसंगत खंडन उन्होंने किया है। साहित्यकार को केवल लिखा नहीं मानते द्विवेदी जी क्योंकि उस पर जनसामान्य को दिशा निर्देश करने का दायित्व है। इसीलिए उसके कथ्य और कथन का अधिकाधिक जनग्राहा होना आवश्यक है। केवल क्षुद्र या सामयिक लाभों के लिए कागज काले करने वाला उन्हें सहा नहीं है । देश काल की चुनौतियों को स्वीकार करने वाली सोद्देश्य रचना का पथ प्रशस्त करने वाले के रूप में हिन्दी जगत ने द्विवेदी जी को पाया था। किसी अन्य एक व्यक्ति ने साहित्य गाय ही इतना प्रभावित हो प्रतिभा दृष्टिका ऐसा संयोग कम हो देखने को मिलता है।

***व्याख्याता**
**व्याकरण**
**राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय**
**अलवर (राज.)**

**सन्दर्भ**

1. तो दिसम्बर १२० ११४
2. रसज्ञ रंजन, पृ० ४०

3. समुच्चय, पृ० १४४ ४. रसज्ञ रंजन, पृ० ३२
4. वही, पृ० १३ ६. वही, पृ० ४०
5. द्रष्टव्य संचयन, पृ० ६१
6. वही, पृ० १०४ ६. रसज्ञ रंजन, पृ० १०
7. संचयन, पृ० २ ११. वही, पृ० ३८
8. वही, पृ०६६ १३. द्रष्टव्य वही, पृ०
9. द्विवेदी काव्य माला, पृ० २३१
10. रसज्ञ रंजन, पृ० ४६ १६. वही, पृ० ५१
11. वही, पृ० ३७ १८. वही, पृ०
12. वही, पृ० १४ २०. वही, पृ० ३४
13. साहित्याला पृ० २२०
14. रसश रंजन, पृ० ४३-४४
15. वही, पृ०
16. द्रष्टव्य वही, पृ० २३
17. वही, पृ० ५६
18. वही, पृ० ३६
19. वही, पृ० ३८
20. सामाहिक हिन्दुस्तान २४.२. ६३, ० १३ से उद्धृत द्विवेदी जी के विचार
21. विचार विमर्श, पृ० ६०
22. द्रष्टव्य, वही, पृ० १५
23. रसज्ञ रंजन, पृ० १५-१६
24. द्रष्टव्य द्विवेदी युग के साहित्कारों के कुछ पत्र सम्पादक वैजनाथ नि
25. विनोद, पृ० ५६